REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

भाषाई आधार पर समाज और संस्कृति की जड़ें खोदते नाट्य प्रयोग

अंकुश शर्मा
नाट्य विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान.

प्रस्तावना :-

साहित्य की एक विधा है नाटक। नाटक और रंगमंच एक दूसरे के पूरक हैं। नाटक को जब तक रंगमंच पर खेला ना जाए, जब तक उसका रसास्वादन प्रेक्षकों द्वारा ना किया जाए, तब तक वह कुछ अधूरा सा रहता है। साहित्य की यह विधा नाटक दरअसल भाषा, समाज और संस्कृति के अंतर्सम्बन्ध को स्थापित करने में ख़ासी भूमिका निभाती है। रंगमंच में नाट्य प्रयोगों के माध्यम से, इन तीनों के सम्बन्ध को उजागर करने में विशेष सहायता मिलती है। कला, साहित्य और संस्कृति किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति और समृद्धि का परिचायक होती हैं। संस्कृति शब्द व्यापक है। किसी स्थान की संस्कृति उसके मूल्यों, मान्यताओं, रहन–सहन तथा खान–पान आदि से परिलक्षित होती है। संस्कृति से समाज और समाज से व्यक्ति का सीधा सम्बन्ध होता है। संस्कृति को बचाने में भाषा मुख्य भूमिका निभाती है और इसी तरह समाज को जोड़ कर रखने का काम करती है। भाषा के ख़त्म होते ही उस क्षेत्र विशेष की पहचान भी कम होने लगती है।

हमारा देश विविधताओं का देश है। "कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वाणी", कहावत इसकी विशालता को प्रदर्शित करती है। इतनी भव्यता लिए हुए हमारे देश में संवाद के लिए ज़ाहिर तौर पर अनेकों भाषाएँ, उप–भाषाएँ और बोलियाँ हैं। भाषा की अहमियत को वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी विशेष माना है। 16 फरवरी 2018 को तालकटोरा स्टेडियम में हुए परीक्षा पर चर्चा कार्यक्रम में उन्होंने कहा था, "मैं चाहता हूँ कि बच्चों को उन्हीं की भाषा में बताऊं लेकिन यह मुश्किल काम है क्योंकि हमारे देश में 100 से अधिक भाषाएँ और 1700 से अधिक उप–भाषाएँ अथवा बोलियाँ प्रयोग की जाती हैं।" [1] उनकी यह पंक्तियाँ भाषाओं के महत्व को बखूबी बयान करती हैं। भाषा किसी भी समाज की संस्कृति का परिचायक होती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भाषा के महत्व पर ज़ोर डालते हुए कहा था –

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।

आद्याचार्य भरत ने भाषा के अंतर्गत शब्दों को भी विशेष माना है। उनकी मान्यता रही कि शब्द से परे कुछ भी नहीं और संसार में वही सब कुछ का कारण भी है। उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र में वर्णित किया है कि –

"वाड्.मयानीह शास्त्राणि वाड्.नष्ठानि तथैव च।
तस्माद्वाचः परं नास्ति वाग् हि सर्वस्य कारणम् ।। [2] नाट्यशास्त्र 15/3

इसका अर्थ है कि इस जगत में सभी शास्त्र तथा वाड.मय शब्दात्मक हैं तथा शब्दनिष्ठ भी। इसलिए वाणी से परे कुछ भी नहीं है और सभी

का कारण शब्द ही होता है।" इस प्रकार शब्दों पर विशेष प्रभाव डाला गया है। इन शब्दों से ही भाषा बनती है और भाषा में शब्द ही निहित होते हैं। इन निहित शब्दों के अंतर्गत ही भावों का भी समावेश हो जाता है।

साहित्य की विधा नाटक में भी भाषा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भाषा और शब्द के बिना नाटक का मूल तत्व जीवित नहीं रह सकता। साहित्य की इस विधा नाटक और उन्हें प्रदर्शित करने के लिए रंगमंच के आपसी सम्बन्ध को विशेष माना गया है। "नाटक एक दुधारी विधा है। वह साहित्य भी है और रंगमंच भी। लेकिन नाटककार का माध्यम केवल भाषा है। इसलिए एक नाटककार के लिए असली चुनौती एक ऐसी भाषा का अन्वेषण है जो इन दोनों प्रयोजनों को एक–साथ साध सके।" [3] सत्यदेव दुबे ने भी कहा है, "नाटक शब्द है। शब्द का अभिनय होना चाहिए। शब्द के लिए आलोक परिकल्पना और संगीत होना चाहिए। शब्द ही है जो कलाकार को जीवित रखता है। जो भी भविष्य का नाटक होगा अगर वह साहित्य की तरफ नहीं झुकेगा तो केवल नाटक की सीमाओं में ही रहेगा।" [4]

अतः स्पष्ट है कि नाटक में भाषा का अपना विशेष महत्व है। दरअसल, भाषा संस्कृति की रक्षक है। भाषा बोलने वालों से ही उनका समाज और अस्तित्व बनता है। भाषा समाज से बनती और विकसित होती है। उसका समाज से सीधा सम्बन्ध होता है। अतः स्पष्ट है कि भाषा के प्रति आदर, सम्मान और लगाव ही समाज और संस्कृति की जड़ों को बचाने का काम कर सकता है। समाज और संस्कृति के सम्बन्ध में माना जा सकता है कि यह भाषा से पुराने है अर्थात् जब कोई भी भाषा प्रयोग में नहीं थी, तब भी समाज था, तब भी संस्कृति थी। सृष्टि के आरंभ के साथ ही समाज, संस्कृति और साहित्य का जन्म हुआ। ऐसा माना जाता है कि साहित्य के अंतर्गत आने वाले नाटक को मंचित करने के लिए जिस अभिनय का प्रयोग किया जाता है, उस अभिनय का उद्य भी सृष्टि के आरंभ के साथ ही हुआ। इस प्रकार अभिनय की कला भाषा से भी बहुत पुरानी है। समाज और संस्कृति में परिवर्तन के साथ ही अभिनय के शुरूआती स्वरूप से लेकर आज तक इसमें भी निरंतर बदलाव आए हैं। अभिनय की कला धीरे–धीरे नाट्य कला का रूप लेती गई और इस तरह इसने साहित्य में कहीं–न–कहीं अपनी पैठ बना ली।

अभिनय की कला को विशेष रूप से लोकानुकरण कहा गया है अर्थात् इसे अनुकरण या नकल करने के आशय के रूप में स्वीकारा जाता है। अभिनय के सम्बन्ध में कहा गया है "भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः अर्थात् अभिनय उसे कहते हैं, जिसमें अभिनेता द्वारा शरीर, मन तथा वाणी से अभिनेय चरित की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है। इस दृष्टि से अभिनय को सामान्यतः अनुकरण या नकल करने के आशय से ग्रहण किया जाता है।" [5] पश्चिम में तकरीबन 2400 साल पहले अरस्तु ने भी "कला को जीवन की अनुकृति कहा है। इस आधार पर माना जा सकता है कि समाज और संस्कृति को अभिनय के माध्यम से परिलक्षित किया जाता है। इस तरह साहित्य के अंतर्गत आने वाले नाटक और उन्हें खेलने के लिए प्रयोग किया जाने वाला रंगमंच भाषा, समाज और संस्कृति के अंतर्सम्बन्ध को स्थापित करने में अहम् भूमिका निभाता है क्योंकि रंगमंच का सबसे प्रमुख तत्व है अभिनय। प्रदर्शन कला में अभिनेता हमेशा ही रंगमंच के केन्द्र में रहे हैं। रंगमंचीय कला में अभिनय का महत्व नकारा नहीं जा सकता। जिस तरह भाषा का समाज के साथ गहरा नाता होता है, उसी तरह नाटक विशेष का भी लोगों से गहरा सम्बन्ध होता है। कहा जा सकता है कि नाटकों में प्रयोग की जाने वाली भाषा के माध्यम से समाज और संस्कृति के मूल को पहचानने और समझने में सहायता मिलती है।

साहित्य को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया जाता है – दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। नाट्य प्रयोगों को दृश्य–श्रव्य काव्य कहा गया है। इसमें सब कुछ साक्षात होता है। आप सब कुछ प्रत्यक्ष होता देखते हैं, अपने सामने। आप कलाकार को बोलते देखते हैं, अपने सामने। अपनी भाषा बोलने में कलाकार कितना सहज महसूस करता है, सही शब्द पर सही भाव व्यक्त करता है या नहीं, आप प्रत्यक्ष इसका उदाहरण बनते हैं। अगर आपको भाषा में कुछ गड़बड़ लगती है तो आप असहज होते हैं। जी हां, दर्शक स्वंय असहज महसूस करते हैं। यह सर्वविदित है कि रंगमंच अपनी जड़ों से जुड़ कर ही दर्शकों को अपील कर सकता है लेकिन हम अपनी जड़ें छोड़ते जा रहे हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण राजधानी दिल्ली में होने वाले नाट्य प्रयोगों में साक्षात् देखने को मिलते हैं। इन्हें देखने से अनुभव होता है कि हम पश्चिम के अनुसार तो नाटकों का प्रदर्शन करते हैं लेकिन देश की संस्कृति, साहित्य और समाज से जुड़े हुए नाटक अब देखने को विरले ही प्रतीत होते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि रंगमंच में प्रस्तुत किए जाने वाले नाट्य प्रयोग अपनी परंपराओं, स्थानीयता या क्षेत्रीयता से जुड़े हुए होने चाहिए, तभी दर्शक वर्ग पर उनकी अटूट छाप दिखाई देगी। इन्हें स्थानीयता से

जोड़ने का सम्बन्ध उस जगह विशेष के साहित्य और उसकी भाषा से भी होता है लेकिन आधुनिक नाट्य निर्देशक, नाटककार, अभिनेता इन्हें महत्व न देकर अपनी संस्कृति से खिलवाड़ कर रहे हैं। बिहार के प्रयोगधर्मी रंगकर्मी सतीश आनंद के अनुसार, "देश काल को समझकर परंपरा से जुड़े बगैर नाटक जीवन्त नहीं हो सकता।" [6] इस परंपरा के अंतर्गत ही भाषा का भी चयन होता है लेकिन आजकल कुछेक निर्देशक नाटकों की भाषा को अहमियत नहीं दे रहे। मसलन, हिन्दी भाषी अभिनेता भोजपुरी में तो भोजपुरी अभिनेता हिन्दी में नाटक कर रहे हैं। इन दिनों दिल्ली में ग़ैर हिन्दी भाषी अभिनेताओं द्वारा हिन्दी में अभिनय करने का चलन बढ़ गया है जबकि कुछ निर्देशकों ने अपने नाटकों को सफल कराने के लिए भाषा से कभी समझौता नहीं किया। हबीब तनवीर, कन्हाई लाल, रतन थियम, के0एन0 पणिक्कर आदि ऐसे ही निर्देशक हैं। इन्होंने अपने क्षेत्रों में जाकर वहां के लोगों के साथ रंगमंच किया। वहां के साहित्य को रंगमंच की धुरी बनाया। भारतीय रंगजगत में मुख्य स्थान रखने वाले नाट्य निर्देशक हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी भाषा में तो रतन थियम ने मणिपुरी भाषा में नाटक कर उन्हें विश्व विख्यात बनाया।

नाट्य प्रयोगों में साहित्य की विधा नाटक के साथ–साथ, इसकी अन्य विधाओं उपन्यासों, कहानियों, कविताओं, निबंध, आलोचना, जीवनी, आत्म–कथा, संस्मरण, व्यंग्य, समीक्षा, साक्षात्कार आदि का भी अभिनय करने का चलन इन दिनों बढ़ गया है। इसलिए अभिनय और अभिनेताओं की भाषा के अपने ख़ास मायने हैं लेकिन इन दिनों नाट्य प्रयोगों में भाषा पर ख़ास ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आजकल अभिनेता किसी भाषा विशेष में सहज महसूस न करते हुए भी उस भाषा में अभिनय कर रहे हैं जो ज़ाहिर तौर पर वह प्रभाव नहीं छोड़ सकता जो प्रभाव वह अपनी भाषा में अभिनय करके छोड़ सकते हैं। पिछले वर्ष रंगमंच से जुड़े देश के सबसे बड़े भारत रंग महोत्सव में भी ऐसे कई नाटक प्रदर्शित हुए जो आते तो अहिन्दी भाषी प्रदेशों से थे लेकिन उन नाटकों की प्रस्तुतियां हिन्दी भाषा में हुई। मैं स्वंय इसका प्रत्यक्षदर्शी रहा हूं जब इन नाटकों को देखने के बाद न ही दर्शक वर्ग सहज महसूस कर रहा था और न ही इन्हें करने वाले अभिनेता। इन नाटकों में दिखाए जाने वाले दृश्य दर्शकों के साथ ही अभिनेताओं के लिए भी अविश्वसनीय प्रतीत हो रहे थे। ऐसी असहज स्थिति और भाषा पर पकड़ न होने के चलते उनमें दिखाई जाने वाली संस्कृति का समाज से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

19वें भारंगम में गुवाहाटी से आए नाटक हंसिनी की हिन्दी प्रस्तुति में भाषागत अंतर स्पष्ट दिखाई दिया। इस नाटक में असमिया अभिनेता अभिनय कर रहे थे लेकिन वह नाटक में हिन्दी भाषा प्रयोग कर रहे थे। यह साफ प्रतीत हो रहा था कि अभिनेता हिन्दी भाषा में असहज महसूस कर रहे हैं लेकिन निर्देशक ने फिर भी उनसे हिन्दी में ही नाटक कराया। इस प्रकार पात्र पूरा समय भाषागत अंतर से ही जूझते रहे। नाटक की समाप्ति पर निर्देशक बहारूल इस्लाम ने माना भी कि उनके अभिनेता और वह स्वंय भी भाषा के बदलने के कारण अभिनय करते हुए मंच पर सहज महसूस नहीं कर रहे थे। यह निर्देशक का बड़प्पन तो ज़रूर है पर समाज और संस्कृति के लिए अत्यंत घातक है। बेहतर होता कि इस नाटक को अभिनेताओं की मातृभाषा असमिया में ही किया जाता। इसी तरह पश्चिम बंगाल से आया एक अन्य नाटक गैंडा भी हिन्दी में प्रस्तुत किया गया। इस नाट्य प्रस्तुति के शुरू होने के साथ ही दर्शकों का प्रेक्षागृह छोड़ने का सिलसिला भी शुरू हो गया। सभी बंगला भाषी अभिनेताओं के मुख से हिन्दी संवादों को दर्शक पचा नहीं पा रहे थे। इस नाटक में बेहतर होता कि बंगाली अभिनेता बांग्ला भाषा में संवाद अदायगी करते।

रंगमंच में अभिनेता हमेशा ही केन्द्र में रहता है लेकिन अगर अभिनेता मंच पर सहज ही महसूस नहीं कर रहा तो सवाल यह उठता है कि रंगमंच पर प्रस्तुत किए गए नाटक ने अपना लक्ष्य कितना हासिल किया ? इस तरह की प्रस्तुतियों को देखकर नाटक का लक्ष्य ही नहीं, अभिनेताओं का कर्तव्य भी डांवाडोल होता है। भाषा पर संयम रखने वाले अभिनेता ही नाटक के भावों को सही तरीके से प्रदर्शित कर पाते हैं और इससे सही रस की अनुभूति दर्शकों में उत्पन्न होती है, जिससे नाटक का लक्ष्य भी हासिल हो जाता है। "केवल संवादों को रटना और उसे मंच पर बोल देना किसी भी तरह रस का स्त्रोत नहीं हो सकता। किसी भी श्रेष्ठ रंग नाटक की भाषा सिर्फ शब्दों से ही नहीं बनती। इसमें शाब्दिक संवादों के साथ–साथ क्रियाओं, गतियों, मुद्राओं, संगीत और छायालोक भी भाषा के अंग बनकर संवादों की भूमिका ग्रहण कर लेते हैं।" [7] अभिनेता अपनी ज़मीन यानि स्थानियता को छोड़ कर जब असहज महसूस करता है तो फिर उसे मंच पर लोगों को रसानुभूति कराने का हक कैसे दिया जाए ? हम चाहे कितने ही आधुनिक हो जांए या आधुनिक होने का लबादा ओढ़ने का ढोंग करें लेकिन अपने अतीत से पीछा छुड़ाना आसान नहीं है। बेशक हम पश्चिम का कितना ही अनुकरण करने की

कोशिश करें लेकिन जड़ों को छोड़ने पर व्यक्ति बेपेंदी का लोटा मात्र होकर ही रह जाता है। "हमारे यहां का आदमी जोड़ कर देखने का आदी है। किसी का परिचय पाने के लिए उसके बाप दादा के नाम और गांव का पता पूछता है। उसे उसकी जड़ों से जोड़ कर पहचानता है। वह अतीत के माध्यम से वर्तमान को समझता है। इसलिए जो जितना पीछे जाएगा उतना ही वर्तमान को जानेगा। हमारा आज का दर्शक वर्तमान के संकट से भागकर अतीत में जाना चाहता है।" [8] अगर नाटक के कलाकार नाटक की प्रस्तुति अपनी ही भाषा में करें तो वह ज़्यादा प्रभावपूर्ण हो जाती है।

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का अहम् माध्यम है। भाषा से ही भाव बनते हैं। भाषा पर सही पकड़ न होने से भाव तो मर ही जाते हैं। मनुष्य भावनात्मक व्यक्ति है। भारतीय संदर्भ में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। सही भावों का प्रदर्शन ही समाज को बांधने और संस्कृति को संजोने का कार्य कर सकता है। किसी भी हाल में भाषा से खिलवाड़ करके, भावों को खोखला बना कर समाज और संस्कृति को नहीं बचाया जा सकता। साहित्य के मंचन और उनकी भाषा के द्वारा समाज और संस्कृति की जड़ों को बचाया जा सकता है। आज आवश्यकता है इन जड़ों को फैलाने की, ना कि इन्हें खोद कर निकाल फेंकने की।

संदर्भ ग्रंथ –

1) प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी, परीक्षा पर चर्चा कार्यक्रम के दौरान, तालकटोरा स्टेडियम, जनवरी 16, 2018
2) हिन्दी नाट्यशास्त्र, अध्याय 15, श्लोक 3, बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
3) हिन्दी नाटक, डा0 वीणा गौतम, पृष्ठ 285, के0के0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
4) हिन्दी नाटक, डा0 वीणा गौतम, पृष्ठ 282, के0के0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
5) भारतीय नाट्य परंपरा और अभिनय दर्पण, नाट्य प्रयोग, वाचस्पति गैरोला, पृ0 149, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
6) हिन्दी नाटक, डा0 वीणा गौतम, पृष्ठ 266, के0के0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
7) आधुनिक भारतीय रंगलोक, जयदेव तनेजा
8) समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, डा0 जयदेव तनेजा, लेख – श्री लक्ष्मीनारायण लाल

LBP PUBLICATION